समाज विकासमाला

गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

समाज-विकास-माला : ७

गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन

'आत्मकथा' के आधार पर

संग्राहक
अशोक

संपादक
यशपाल जैन

1957
१९५७

सस्ता साहित्य मण्डल-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

तीसरी बार : १९५७
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स,
दिल्ली

समाज-विकास-माला

हमारे देश के सामने आज सबसे बड़ी समस्या करोड़ों आदमियों की शिक्षा की है। इस दिशा में सरकार की ओर से यदि कुछ कोशिश हो रही है तो वही काफी नहीं है। यह बड़ा काम सबकी सहायता के बिना पार नहीं पड़ सकेगा। बालकों तथा प्रौढ़ों की पढ़ाई की तरफ जबसे ध्यान गया है, ऐसी किताबों की मांग बढ़ गई है, जो बहुत ही आसान हों, जिनके विषय रोचक हों, जिनकी भाषा मुहावरेदार और बोलचाल की हो और जो मोटे टाइप में बढ़िया छपी हों।

इस पुस्तक-माला को हमने इन्हीं बातों को सामने रखकर चालू किया है। इसमें कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। इन सबकी भाषा बड़ी आसान रक्खी गई है और जहांतक हो सका है, मिले-जुले कठिन शब्दों का प्रयोग नहीं होने दिया है। विषयों का चुनाव भी बड़ी साव-धानी से किया गया है। विषय ऐसे लिये गये हैं, जिनमें पाठकों की खास रुचि हो। छपाई-सफाई के बारे में भी विशेष ध्यान रक्खा गया है। हर किताब में चित्र भी देने की कोशिश की है।

यदि पुस्तकों की भाषा, शैली, विषय और छपाई में पाठकों को सुधार की गुंजाइश मालूम हो तो उसकी सूचना निस्संकोच देने की कृपा करें।

तीसरा संस्करण

बड़े हर्ष की बात है कि इस पुस्तक का तीसरा संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित हो रहा है। इस माला की सभी पुस्तकें पाठकों को पसंद आ रही हैं, इससे हमें बड़ा आनंद होता है। हमें विश्वास है कि इन सामयिक और उपयोगी पुस्तकों को पाठक चाव से पढ़ेंगे और इनके प्रचार में हाथ बटायंगे।

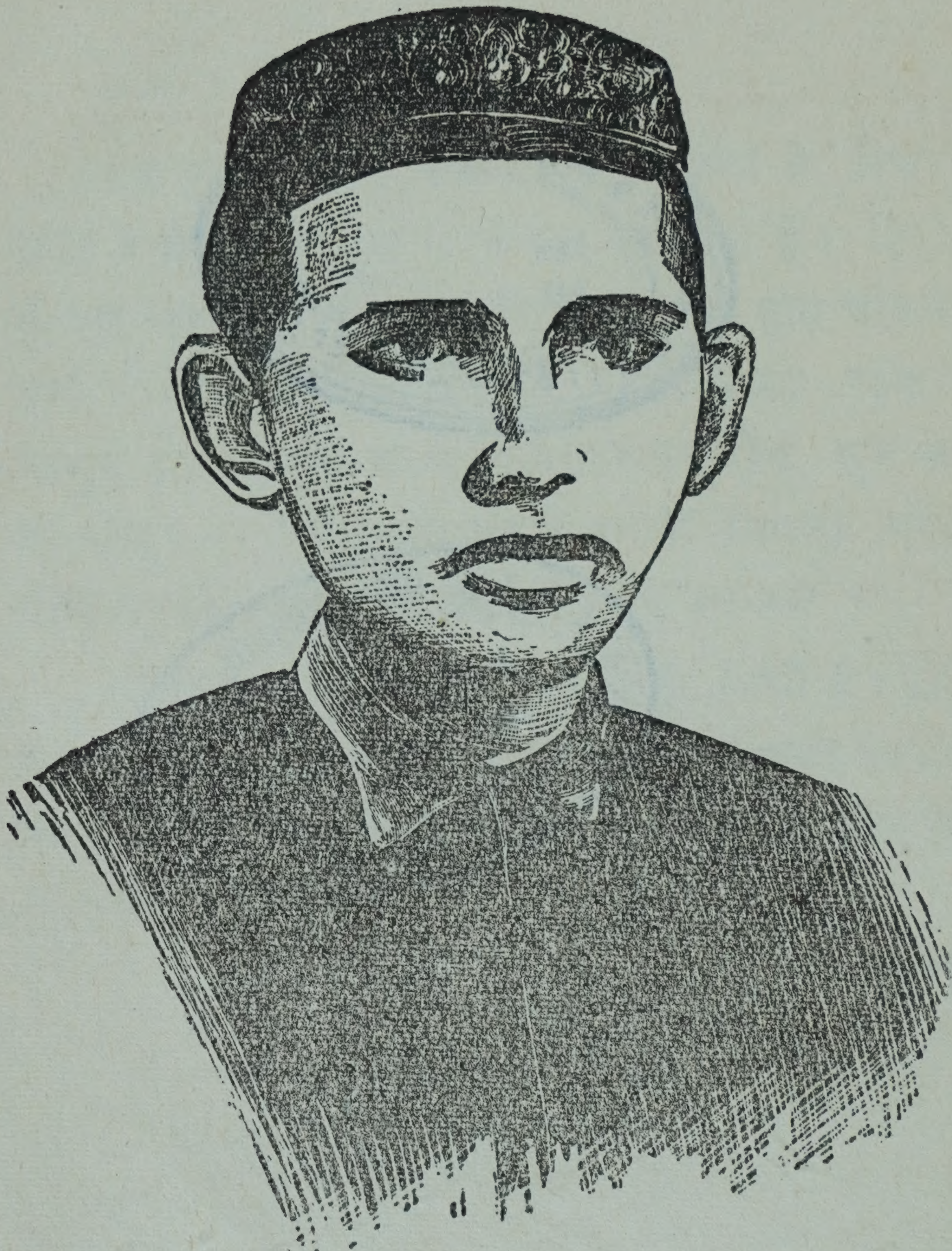
—मंत्री

पाठकों से

इस पुस्तक में महात्मा गांधी के जन्म से लेकर लंदन में बैरिस्टरी पास करने तक का हाल है। हिंदी में एक कहावत है। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात।" गांधीजी के बचपन की घटनाओं को पढ़कर मालूम होता है कि उनमें महानता का बीज शुरू से ही मौजूद था। जैसे-जैसे अच्छी धरती मिलती गई, बीज पनपता गया और वह इतने बड़े बन गये।

गांधीजी ने अपनी कहानी आप ही लिखी है। इस किताब की सामग्री उसीमें से ली गई है। कड़ी बनाये रखने के लिए कहीं-कहीं दो-एक शब्द अपनी ओर से जोड़ दिये गए हैं।

—संपादक



विद्यार्थी मोहन

गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन

: १ :

जन्म

गांधी कुटुंब पहले पंसारी का धंधा करता था, पर मेरे दादा से लगाकर तीन पीढ़ियों से वह दीवान-गिरी करता आया था। मेरे दादा उत्तमचंद गांधी बड़े टेकवाले आदमी थे। उन्हें राज-दरबारी चक्करों के कारण पोरबंदर छोड़ जूनागढ़ राज्य में जाकर रहना पड़ा था।

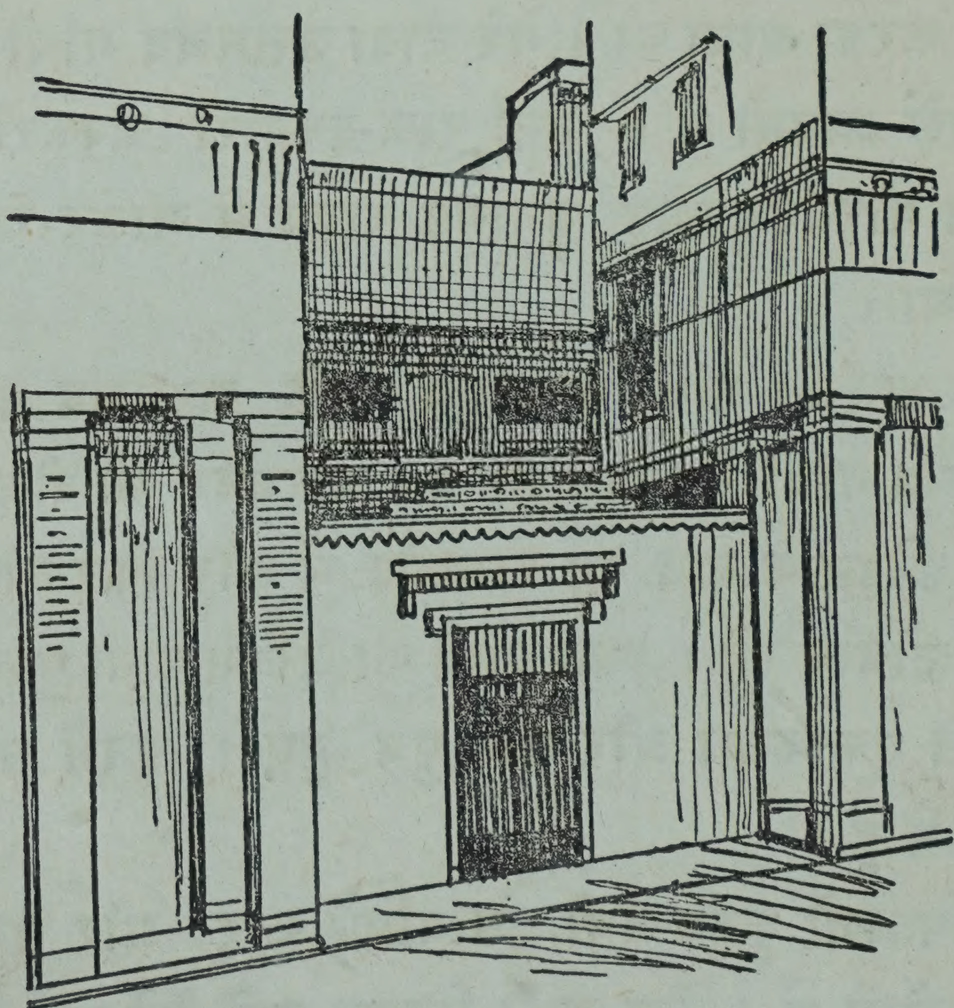
उत्तमचंद गांधी के पांचवें लड़के करमचंद गांधी उर्फ कबा गांधी मेरे पिताजी थे। पोरबंदर की दीवान-गिरी छोड़ने के बाद वह राजकोट में और फिर वांका-नेर में दीवान रहे। कबा गांधी की अंतिम पत्नी पुतली-बाई से एक कन्या और तीन पुत्र हुए। इनमें सबसे छोटा मैं हूं।

पिताजी कुटुंब-प्रेमी, सत्यप्रिय, शूर और उदार परंतु क्रोधी थे। वह कभी रिश्वत नहीं लेते थे। इस कारण अच्छा न्याय करते थे। उनको धन जोड़ने का

लोभ न था। शिक्षा उन्होंने अनुभव से प्राप्त की थी। कथा-पुराण सुनने से जो धर्म-ज्ञान बहुत-से हिंदुओं को सहज मिल जाता है, वह उन्हें था।

माताजी साध्वी स्त्री थीं। वह बहुत श्रद्धालु थीं। पूजा-पाठ किये बिना कभी भोजन नहीं करती थीं। वह व्यवहर-कुशल थीं। राज-दरबार की सब बातें जानती थीं।

इन माता-पिता के यहां आश्विन बदी १२ संवत्



इस घर में गांधीजी पैदा हुए थे

१९२६ अर्थात् २ अक्तूबर, १८६९ को पोरबंदर अथवा सुदामापुरी में मेरा जन्म हुआ।

: २ :

बचपन और विवाह

मेरा बचपन पोरबंदर में ही बीता। किसी पाठ-शाला में पढ़ने बैठाया गया था, पर मुश्किल से कुछ पहाड़े वहां पढ़ा होऊंगा।

पोरबंदर से पिताजी जब राजकोट गये तब मेरी उम्र सात वर्ष की होगी। पाठशाला से फिर ऊपर के स्कूल और वहां से हाईस्कूल में गया।

मुझे न तो यही याद है कि तबतक मैंने किसी भी शिक्षक से झूठ बोला हो या यही कि किसी लड़के से दोस्ती जोड़ी हो। मैं बहुत झेंपू था।

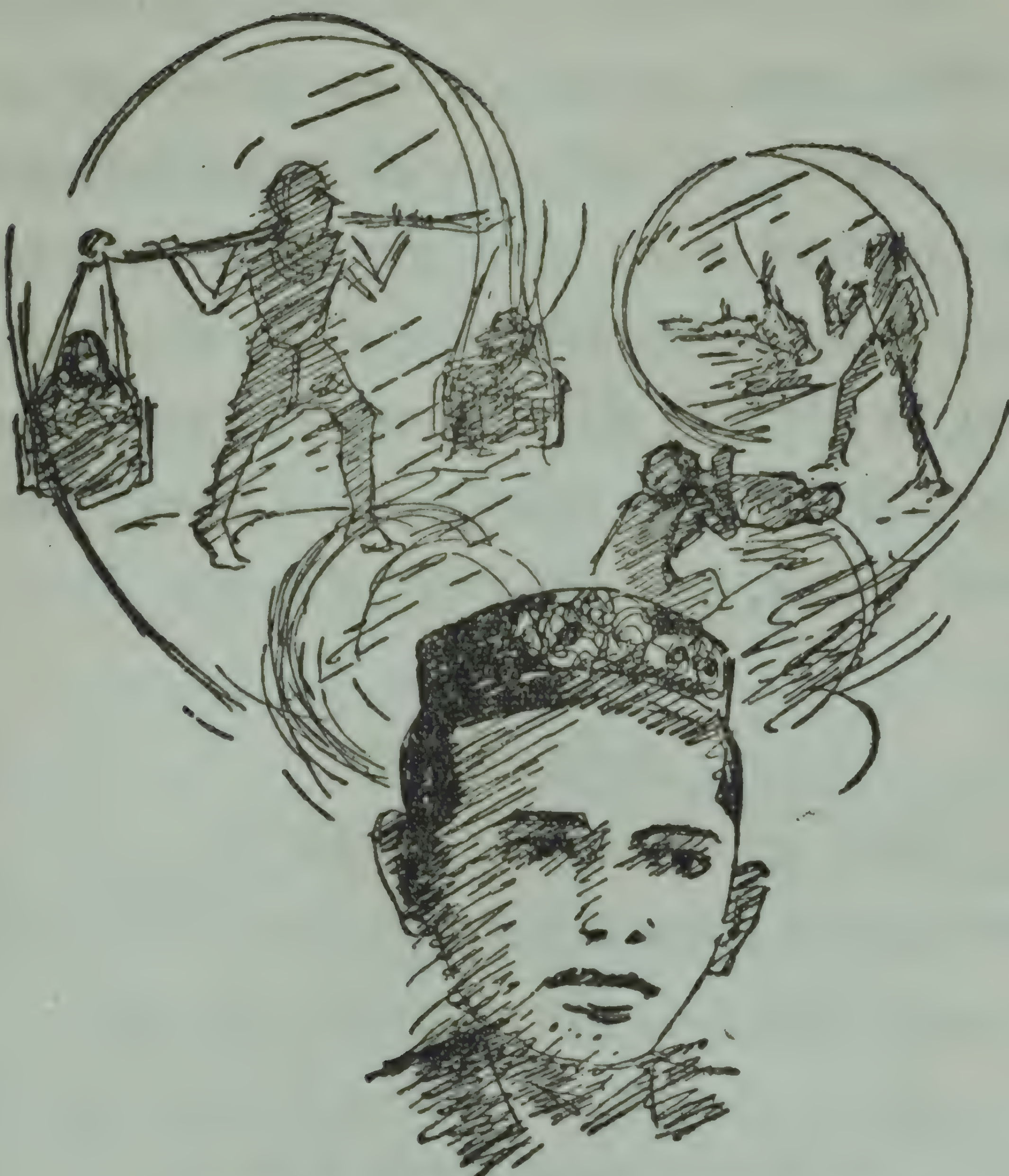
हाईस्कूल के पहले ही साल की एक घटना लिखने योग्य है। इंस्पेक्टर निरीक्षण करने आये। उन्होंने लड़कों को अंग्रेजी के पांच शब्द लिखवाये। उनमें एक शब्द Kettle (केटल) मैंने गलत लिखा। मास्टर ने मुझे इशारे से चेताया। पर मैं क्यों चेतता? यह बात किसी भी तरह मेरी समझ में नहीं आ सकती थी कि मास्टर

यह चाहते हैं कि मैं अपने साथी की स्लेट से नक़ल कर लूं। मैं तो यह मान रहा था कि मास्टर यह देख रहे हैं कि हम दूसरे की नकल तो नहीं कर रहे हैं।

सब लड़कों के पांचों शब्द सही निकले। एक मैं ही बुद्धू साबित हुआ। बाद में मास्टर ने मेरी 'मूर्खता' मुझे बताई, पर मुझपर उसका कुछ असर न हुआ। दूसरों की नकल करना मुझे कभी न आया।

पिताजी 'श्रवण-पितृ-भक्ति' नाम का एक नाटक खरीद लाये थे। मैंने उसे बड़े चाव से पढ़ा। उन्हीं दिनों शीशे में तस्वीर दिखानेवाले लोग आया करते। उनमें मैंने श्रवण का,अपने अंधे माता-पिता को कांवर में बैठाकर तीर्थयात्रा को ले जानेवाला, चित्र देखा। ये दोनों चीजें मेरे मन पर अंकित होगईं। मैंने अपने दिल में कहा कि मैं भी श्रवण की तरह बनूं।

मैंने सत्य हरिश्चंद्र का नाटक भी देखा। बार-बार उसे देखने को मन हुआ करता। हरिश्चंद्र के सपने आते। यही धुन समाई रहती कि हरिश्चंद्र की तरह सत्यवादी सब क्यों न हों। यही बात मन में जम गई कि हरिश्चंद्र के जैसी विपत्तियां भोगना, पर सत्य को न छोड़ना ही सौ बातों की एक बात है।



पितृभक्त श्रवण और सत्यवादी हरिश्चंद्र के चित्र
मन पर अंकित होगये

यह लिखते हुए मुझे बड़ा दुःख होता है कि तेरह वर्ष की अवस्था में मेरा विवाह हुआ। हिंदू-संसार में बालक वर-वधू को मां-बाप बहुत समय एक साथ नहीं रहने देते। हम भी १३ और १८ साल की उम्र के बीच थोड़ा-थोड़ा करके तीन साल से अधिक साथ न रह सके होंगे।

मेरी पत्नी कस्तूरबाई पढ़ी-लिखी न थी। स्वभाव से सीधी, स्वतंत्र, मेहनती और कम बोलनेवाली थी। उसे पढ़ाने की मुझे बड़ी हवस थी; लेकिन मेरी अपनी कमजोरी उसमें बाधक थी। पर पत्नी के साथ मेरी आसक्ति के साथ-साथ मेरे दिल में कर्तव्य की भावना न होती तो मैं रोग से पीड़ित होकर मर जाता अथवा दुनिया में मेरा जीना व्यर्थ हो जाता। जिसकी निष्ठा सच्ची होती है, उसे भगवान बचा लेता है।

: ३ :

स्कूल-जीवन

विवाह का परिणाम यह हुआ कि मेरा एक साल बेकार होगया। मगर मेरा अभ्यास चलता रहा। पांचवें और छठे दरजे में तो छात्रवृत्तियां भी मिली थीं।

अपने चाल-चलन की देख-भाल में बहुत सख्ती से किया करता था। सदाचार में यदि चूक होती तो मेरी आंखों में आंसू भर आते। शिक्षक का उलाहना मेरे लिए असह्य हो जाता।

मैंने पुस्तकों में पढ़ा था कि खुली हवा में घूमना अच्छा होता है। यह मुझे पसंद आया और तभीसे मैंने टहलने की आदत डाल ली। घूमना भी एक प्रकार का व्यायाम ही है। इस कारण मेरा शरीर

ठीक-ठीक मज़बूत होगया।

एक भूल की सजा मैं आज तक भुगत रहा हूं। पढ़ाई में अक्षर अच्छे होने की ज़रूरत नहीं, यह ग़लत खयाल मेरे मन में ठेठ विलायत जाने तक रहा। जब दूसरों के मोती-जैसे अक्षर देखे तब पछताया। मैंने देखा कि अक्षर बुरे होना अधूरी शिक्षा की निशानी है। पीछे से मैंने अपने अक्षर सुधारने का प्रयत्न किया, परंतु पक्के घड़े पर कहीं मिट्टी चढ़ सकती है ?

सुलेखन शिक्षा का जरूरी अंग है। उसके लिए चित्र-कला सीखनी चाहिए। बालक जब चित्रकला सीखकर चित्र बनाना जान जाता है तब यदि अक्षर लिखना सीखे तो उसके अक्षर छापे की तरह हो जायं।

मेरे संस्कृत-शिक्षक काम लेने में बड़े सख्त थे। फ़ारसी के शिक्षक नरम थे। विद्यार्थी आपस में बातें भी करते कि फ़ारसी बड़ी सरल है। यह सुनकर मैं ललचाया और एक दिन फ़ारसी के दरजे में बैठा। यह देखकर संस्कृत-शिक्षक ने मुझे बुलाया और कहा, "यह तो सोचो कि तुम किसके लड़के हो ? अपने धर्म की भाषा तुम नहीं पढ़ना चाहते ? तुमको कठिनाई हो सो मुझे बताओ। मैं तो सब विद्यार्थियों को अच्छी संस्कृत पढ़ाना चाहता हूं। आगे चलकर तो उसमें तुमको रस

के घूंट मिलेंगे। देखो, हिम्मत न हारो। तुम फिर मेरी कक्षा में आकर बैठो।" मैं उन शिक्षक के प्रेम की अवहेलना न कर सका। आज मेरी अंतरात्मा उनका उपकार मानती है, क्योंकि आगे चलकर मैंने समझा कि किसी भी हिंदू बालक को संस्कृत का अच्छा अध्ययन किये बिना न रहना चाहिए।

: ४ :

आचरण की सावधानी

हाईस्कूल में मैं मंदबुद्धि विद्यार्थी नहीं माना जाता था। पर मेरी निजी स्मृति यह है कि मुझे अपनी होशियारी का कोई गर्व न था। इनाम या छात्रवृत्ति पाने पर मुझे आश्चर्य होता था। लेकिन अपने चाल-चलन की मुझे बड़ी चिंता रहती थी। मेरे हाथों कोई ऐसी बात हो या शिक्षकों को ऐसा मालूम हो कि उन्हें मुझे डांटना-डपटना पड़े तो यह मेरेलिए असह्य था। मुझे याद है कि एक बार मुझे मार खानी पड़ी थी। मुझे मार का दुःख नहीं था; पर मैं दंड का पात्र समझा गया, इस बात का बड़ा दुःख था। यह बात पहले या दूसरे दर्जे की है।

दूसरी बात सातवें दर्जे की है। उस समय के हेड-

मास्टर विद्यार्थी-प्रिय थे। वह नियमों की पाबंदी कराते थे। बाकायदा काम करते और काम लेते थे। पढ़ाते अच्छा थे। उन्होंने ऊपर की कक्षा के विद्यार्थियों के लिए कसरत, क्रिकेट अनिवार्य कर दिये थे। मुझे इन चीजों से अरुचि थी। अनिवार्य होने के पहले तो मैं कभी कसरत, क्रिकेट या फुटबाल में गया ही नहीं था। न जाने में मेरा झेंपू स्वभाव भी एक कारण था। आज इस अरुचि में मैं अपनी गलती देखता हूं। उस समय मेरी यह गलत धारणा थी कि कसरत का शिक्षण के साथ कोई संबंध नहीं है। बाद को समझ में आया कि विद्याभ्यास में व्यायाम अर्थात् शारीरिक शिक्षा का मानसिक शिक्षा के बराबर ही स्थान होना चाहिए।

व्यायाम की अरुचि का दूसरा कारण था पिताजी की सेवा करने की तीव्र इच्छा। स्कूल बंद होते ही तुरंत घर जाकर उनकी सेवा में लग जाता। कसरत अनिवार्य हो जाने से इस सेवा में विघ्न पड़ने लगा। पिताजी की सेवा के लिए कसरत से माफ़ी पाने की दरख्वास्त दी। पर हेडमास्टर साहब कब माफ़ी देने-वाले थे! एक शनिवार को स्कूल सवेरे का था। शाम को चार बजे कसरत में जाना था। मेरे पास घड़ी न थी। आकाश में बादल थे, इससे समय का पता न

चला। बादलों से धोखा खा गया। कसरत के लिए जब पहुंचा तो सब जा चुके थे। दूसरे दिन जब हेड-मास्टर साहब ने हाजिरी देखी तो मैं गैरहाजिर निकला। मुझसे वजह पूछी गई। मैंने जो बात थी, बता दी। उन्होंने उसे सही नहीं माना और मुझपर एक या दो आना (ठीक याद नहीं कितना) जुर्माना हुआ। मैं झूठा बना। मुझे भारी दुःख हुआ। मैं झूठा नहीं हूं, यह कैसे साबित करूं? कोई उपाय न था। मैं मन मसोसकर रह गया। रोया। बाद में समझ आई कि सही बोलने और सही काम करनेवाले को गाफिल भी नहीं रहना चाहिए। इस तरह की गफलत मेरे अध्ययन-काल में यह पहली और आखिरी भी थी।

: ५ :

दुःखद प्रसंग

मेरे मंझले भाई के एक मित्र का मैंने संग किया। उसकी सोहबत मेरी मां, बड़े भाई और पत्नी तीनों को नापसंद थी; परंतु मैंने कहा कि मैंने केवल उसे सुधारने को उसके साथ दोस्ती की है।

लेकिन मैंने देखा कि मेरी धारणा गलत थी। उस मित्र ने मुझसे कहा कि हम मांस नहीं खाते, इसलिए कमजोर होगये हैं। अंग्रेज जो हमपर राज करते हैं

इसका कारण यह है कि वे मांस खाते हैं। उसके इस प्रकार के समझाने से मैं मानने लगा कि मांस खाना अच्छा है, उससे मैं बलवान और निडर बनूंगा और सारा देश यदि मांस खाने लगे तो हम अंग्रेजों को हरा सकते हैं। मांसाहार शुरू करने का दिन तय हुआ।

मैं माता-पिता का परम भक्त था। मैं मानता था कि यदि उन्हें मेरे मांसाहार का पता लग जायगा तो वे मारे शोक के मर जायंगे। जान-अनजान में मैं सत्य का सेवक था ही। मांस खाने पर माता-पिता को धोखा देना पड़ेगा, यह मैं जानता था; पर बलवान बनने, अंग्रेजों को हराकर भारत को स्वतंत्र करने की उमंग में मैं अंधा बन गया था।

इस तरह एक साल गया होगा। इस बीच पांच-छः बार मांस खाया होगा। जब कभी ऐसे भोजनों में शरीक होता तो घर आकर खाना नहीं खाया जाता था। मां खाने को बुलातीं तो बहाना करना पड़ता कि आज भूख नहीं, खाना पचा नहीं, वगैरा। इससे मेरे दिल को सख्त चोट पहुंचती। मैं जानता कि मैं झूठ बोल रहा हूं और वह भी अपनी मां से। फिर यदि मां-बाप जान जायं कि लड़के मांस खाने लग गये हैं तब तो उनपर बिजली ही टूट पड़ेगी। ये विचार मेरे दिल को कोंचते रहते।

इसलिए मैंने निश्चय किया कि "मांस खाना आवश्यक है, पर माता-पिता को धोखा देना मांस न खाने से ज्यादा बुरा है। इसलिए माता-पिता के जीते जी मांस नहीं खाना चाहिए।" यह निश्चय मैंने अपने मित्र को बतला दिया। उस दिन से जो मांस खाना छूटा सो हमेशा के लिए छूट गया।

इसी मित्र के संग के कारण मैं एक दूसरी बुरी आदत में फंस जाता। पर जिसको भगवान बचाना चाहता है वह गिरने की इच्छा करते हुए भी बच जाता है।

इस मित्र की बातें मानकर मैंने अपनी पत्नी को दुःख दिया। हिंदूस्त्री ही ऐसे दुःखों को सहन कर सकती है। इसलिए मैंने स्त्री को सहनशीलता की मूर्ति माना है।

इस मित्र की बुराइयों का भान मुझे बहुत बाद में हुआ। मेरी आंखें तब खुलीं जब मैंने उनमें वे दोष प्रत्यक्ष देखे, जिनसे मैं उन्हें मुक्त मानता था। पर अभी तो और कटु अनुभव होने बाकी थे।

: ६ :

चोरी और प्रायश्चित्त

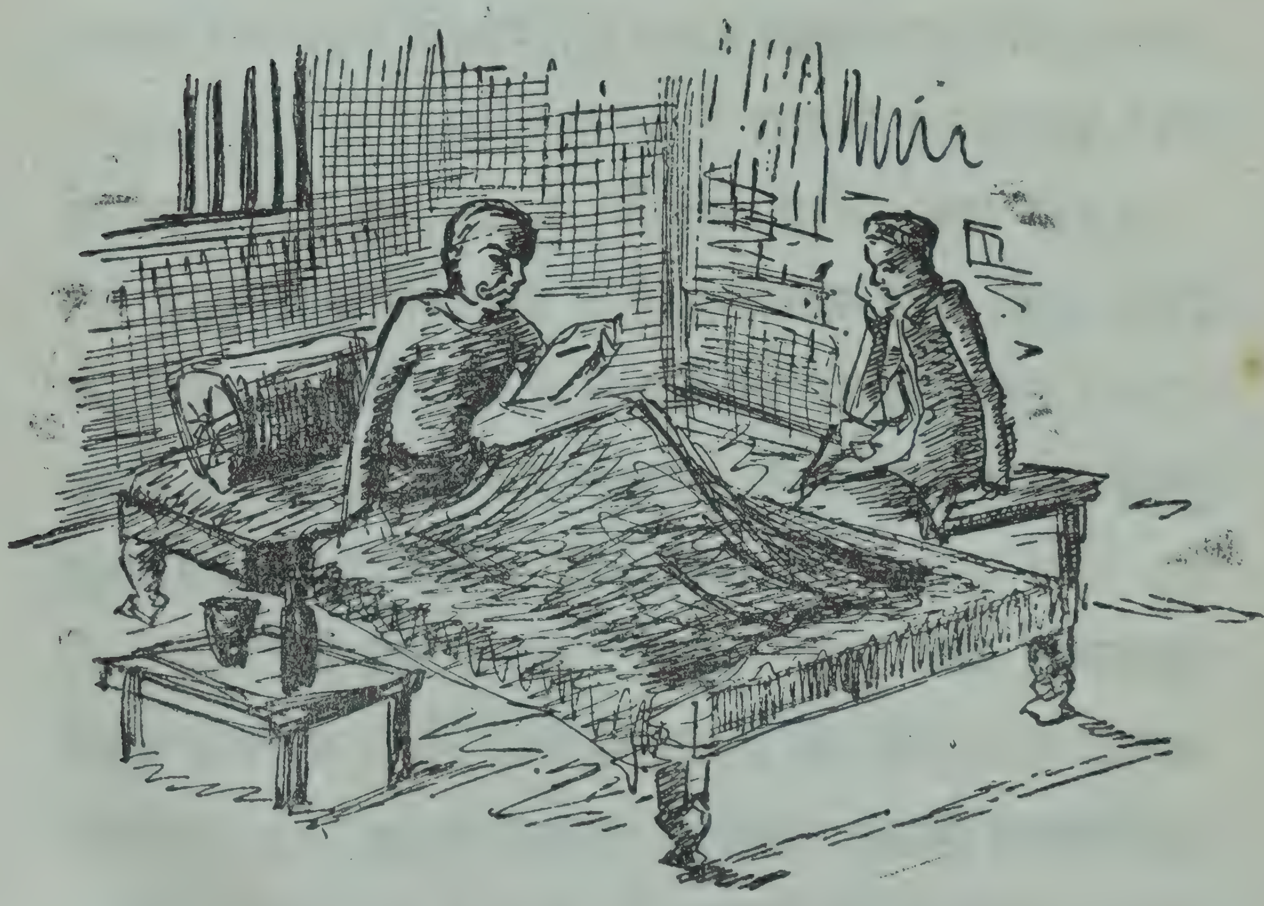
अपने एक रिश्तेदार के साथ मुझे बीड़ी पीने का चस्का लग गया। हम नौकरों के पैसों में से एकाध

पैसा चुराकर बीड़ी खरीदने लगे। परंतु हमें इससे संतोष नहीं हुआ। बढ़े-बूढ़ों की आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं कर सकते, यह सहा नहीं गया। हमने आत्म-हत्या करने का निश्चय किया। पर जहर खाने की हिम्मत न होती थी। मौत से डर गये और यह तय किया किया कि रामजी के मंदिर में जाकर दर्शन करके सो रहें।

इसके बाद हमारी बीड़ी पीने की और नौकरों के पैसे चुराने की टेव छूट गई। इस आदत को मैंने सदा जंगली, हानिकारक और गंदी माना है। रेल के डिब्बे में, जहां बीड़ियां फूंकी जाती हों, मुझसे बैठा नहीं जाता, मेरा दम घुटने लगता है।

दूसरी एक और चोरी मुझसे हुई है। उसे मैं इससे कहीं बड़ी समझता हूं। उस समय मैं पंद्रह वर्ष का था। यह चोरी थी मेरे भाई के सोने के कड़े के टुकड़े की। उन्होंने कोई २५ रुपये का कर्ज कर लिया था, जिसे हम दोनों चुकाने के चक्कर में थे। कड़ा कटवाकर कर्ज चुका दिया गया। पर मेरेलिए यह घटना असह्य होगई। इसके बाद मैंने चोरी न करने का निश्चय किया। मन में आया कि पिताजी के सामने जाकर चोरी कबूल कर लूं। अंत में मैंने चिट्ठी लिख-

कर कांपते हाथ से पिताजी को दी। वह बीमार थे। चिट्ठी देकर मैं उनकी चौकी के सामने बैठ गया। उन्होंने चिट्ठी पढ़ी। आंखों से मोती की बूंदें टपकने लगीं। चिट्ठी भीग गई। थोड़ी देर के लिए उन्होंने आंखें मूंद लीं। चिट्ठी फाड़ डाली। चिट्ठी पढ़ने को उठ बैठे थे, सो फिर लेट गये। मैं भी रोया। पिताजी को कितना दुःख हुआ है, यह समझ सका। इन मोती की बूंदों के प्रेम-बाण ने मुझे बींध डाला। मैं शुद्ध हो गया। मेरेलिए यह अहिंसा का पदार्थ-पाठ था।



चोरी का सच्चा प्रायश्चित

पिताजी की मृत्यु

पिताजी को भगंदर की बीमारी होगई थी। वह बिछौने पर ही लेटे रहते थे। उनके घाव को धोना, उसमें दवा डालना, मरहम लगाना, दवा पिलाना और जरूरत हो तब घर पर दवा तैयार करना, यह मेरा खास काम था। रोज रात को उनके पैर दबाना और जब वह कहें तब अथवा उनको नींद आ जाने के बाद सोना मेरा नियम था। यह सेवा मुझे बहुत प्रिय थी।

यद्यपि मैं रात को पिताजी के पैर दबाया करता, पर मन सोने के कमरे की ओर दौड़ा करता। उनकी सेवा से छुट्टी मिलती तो मुझे खुशी होती और पिताजी को प्रणाम करके मैं सीधा सोने के कमरे में चला जाता।

मौत की रात पास आई। किसीको खयाल तक न था कि यह रात आखिरी साबित होगी। रात के ग्यारह बजे होंगे। मैं पैर दबा रहा था। चाचाजी ने मुझसे कहा—"तुम जाओ, अब मैं बैठूंगा।" मैं खुश हुआ और सीधा सोने के कमरे में गया। पांच ही मिनट हुए होंगे कि नौकर ने दरवाजा खटखटाया। मैं चौंका। "उठो, बापू की तबीयत बहुत खराब है।" नौकर बोला।

"क्या बात है ?"

"बापू गुजर गये ।"

मैं पिताजी के कमरे में दौड़ा गया । चाचाजी के मुंह से सुना कि बापू तो हमको छोड़कर चले गये । पिताजी को अपनी मृत्यु का संकेत मिल चुका था । उन्होंने इशारे से लिखने की सामग्री मांगी और लिखा–"तैयारी करो ।" इतना लिखकर अपने हाथ पर बंधा तावीज तोड़ फेंका, सोने की कंठी पहने थे उसे भी तोड़ फेंका और एक क्षण में प्राण-पखेरू उड़ गये ।

मैं बहुत दुःखी हुआ । अगर मैं अंतिम घड़ी तक उनके पैर दबाता रहता तो अंत काल का यह वियोग मेरे भाग्य में न होता ।

: ८ :

धर्म की झलक

छठे-सातवें से शुरू करके सोलह साल का होने तक पढ़ा, पर पाठशाला में कहीं भी धर्म की शिक्षा नहीं मिली । वैष्णव संप्रदाय में जन्म होने के कारण मुझे वैष्णव मंदिर जाने का मौका अक्सर मिला करता था । पर मंदिर का वैभव मुझे न रुचा । वहां से मुझे कुछ न मिला ।

मंदिर से न मिलनेवाली चीज मुझे अपनी दाई से

मिली। मैं भूत-प्रेत से डरता था। मुझे उसने बताया कि इसकी दवा रामनाम है। इसलिए मैं बचपन में भूत-प्रेत के डर से बचने के लिए रामनाम का जप करता। वह अधिक दिन नहीं चला। पर बचपन में बोया बीज व्यर्थ नहीं गया। आज मेरेलिए रामनाम अमोघ शक्ति होगया है, उसका कारण रंगाबाई का बोया हुआ वह बीज ही है।

पर जिस चीज ने मेरे दिल पर गहरा असर डाला वह तो था रामायण का परायण। पिताजी रामजी के मंदिर में रोज रात को रामायण सुनते थे। कथा कहनेवाले थे बीलेश्वर के लाधा महाराज। लोग कहते थे कि उन्हें कोढ़ होगया था। परंतु उन्होंने कोई दवा नहीं की। सिर्फ महादेव पर चढ़े हुए बिल्वपत्र को कोढ़वाले अंगों पर बांधते रहे और रामनाम जपते रहे। अंत में कोढ़ जड़ से चला गया।

लाधा महाराज का स्वर मधुर था। वह खुद रस में डूब जाते और सुननेवालों को भी लीन कर देते। रामायण पर आज जो मेरा अत्यंत प्रेम है, उसकी बुनियाद यह रामायण का सुनना ही है। आज मैं तुलसीदासजी की रामायण को भक्ति-मार्ग का सर्वोत्तम ग्रंथ मानता हूं।

राजकोट में हर संप्रदाय के प्रति आदर-भाव

रखना सीखा, क्योंकि माता-पिता वैष्णव-मंदिर जाते, शिवालय जाते व राम-मंदिर भी जाते थे। हमें भी साथ ले जाते थे।

फिर पिताजी के पास एक-न-एक जैन साधु भी आया करते। वह उनको भिक्षा भी देते। इसके सिवा पिताजी के मुसलमान तथा पारसी मित्र भी थे। वे अपने-अपने धर्म की बातें सुनाया करते और पिताजी सुनते। इस तरह मेरे मन में सब धर्मों के प्रति समान भाव पैदा हुआ।

एक बात ने मेरे दिल में गहरी जड़ पकड़ ली। वह यह कि सृष्टि नीति के पाये पर खड़ी है। नीति मात्र का समावेश सत्य में होता है।

फिर एक छप्पय भी हृदय में अंकित होगया, जिसका अर्थ है––

"जो कोई हमको पानी पिलावे, उसे हम अच्छा खाना खिलावें। जो हमारे आगे सिर झुकावे, उसको हम दंडवत् प्रणाम करें। जो तांबे का पैसा दे, उसको हम सोने की मुहरें दें। जो हमारी जान बचावे, उसका दुःख मिटाने के लिए हम मरें। जिसने हमारा भला किया, उसका दसगुना भला मन-वचन-काया से करें। बुरा करनेवाले का जो भला करता है, वह विश्व-

विजयी होता है।"

अपकार का बदला अपकार नहीं, बल्कि उपकार है, यह बात मेरा जीवन-सूत्र बन गई।

: ९ :

विलायत की तैयारी

१८८७ में मैट्रिक की परीक्षा पास की। राजकोट से अहमदाबाद की पहली बार अकेले यात्रा की।

भावनगर कालेज में पहला साल पूरा करके घर आया।

हमारे कुटुंब के पुराने मित्र और सलाहकार एक विद्वान व्यवहार-कुशल ब्राह्मण मावजी दवे थे। छुट्टी के दिनों में वह घर आये। मैं शामलदास कालेज में पढ़ता हूं, यह सुनकर बोले, "अब जमाना बदल गया है। तुममें से कोई कबा गांधी की गद्दी पाना चाहो तो वह बिना पढ़ाई के नहीं हो सकता। तुम्हें चाहिए कि इसे विलायत पढ़ने भेजो। केवलराम (मावजी दवे के पुत्र) कहते हैं कि वहां की पढ़ाई सरल है।"...

फिर मेरी ओर देखकर बोले,"क्यों, तुम्हें विलायत जाना पसंद है? या यहीं पढ़ोगे?"

मेरेलिए यह 'नेकी और पूछ-पूछ' वाली मसल हो गई। मैंने कहा कि विलायत भेजें तो बहुत ही

अच्छा । पर यह क्यों नहीं हो सकता कि मैं डाक्टरी पढ़ने जाऊं ?

"डाक्टरी पास करके तुम दीवान नहीं बन सकते। इसलिए बैरिस्टर बनने में ही बुद्धिमानी है।"

मैंने हवाई किले बनाने शुरू किये, परंतु रुपये का क्या इन्तज़ाम करें ? मैंने सुझाया कि पत्नी के गहने बेच डाले जायं। किंतु भाईसाहब ने किसी-न-किसी तरह रुपये का बंदोबस्त करने का बीड़ा उठाया।

पर माताजी क्योंकर मानतीं? किसीने कहा——लड़के विलायत जाकर बिगड़ जाते हैं। कोई कहता था——वे मांस खाते हैं। किसीने कहा कि वहां शराब पिये बगैर चलता ही नहीं। मैंने कहा कि मैं इन तीनों बातों से बचूंगा।

माताजी बोली, "मुझे तेरा विश्वास है। पर मेरी समझ में नहीं आता कि क्या करूं और क्या न करूं ? अच्छा, बेचरजी महाराज से पूछूंगी।"

बेचरजी महाराज मोढ़ बनिये से जैन साधु हुए थे। उन्होंने कहा, "मैं इससे प्रतिज्ञा करा लूंगा। फिर जाने देने में कोई हर्ज नहीं" मैंने मांस, मदिरा आदि से दूर रहने की प्रतिज्ञा ली। तब माताजी ने इजाजत दे दी।

बड़े-बूढ़ों के आशीर्वाद के साथ मैं बंबई पहुंचा।

बंबई का मेरा यह पहला सफर था, इसलिए बड़े भाई साथ आये।

इसी बीच जाति में खलबली मची। पंचायत इकट्ठी हुई। जाति के मुखिया सेठजी मुझसे कहने लगे, "पंचों के विचार में तुम्हारा विलायत जाना ठीक नहीं है। हमने सुना है कि विलायत में धर्म-पालन नहीं हो सकता।"

मैंने कहा कि विलायत जाना कोई अधर्म नहीं है। मुझे तो वहां पढ़ाई के लिए जाना है। फिर जिन बातों का आपको भय है, उनसे दूर रहने की प्रतिज्ञा माताजी के सामने ले ली है।

पर सेठजी ने हुक्म सुनाया कि यह लड़का आज से जात-बाहर समझा जाय। जो इसकी मदद करेगा या इसे पहुंचाने जायगा, वह जाति का गुनहगार होगा और उससे सवा रुपया दंड लिया जायगा।

मुझपर इसका कोई असर नहीं हुआ और ४ सितंबर, १८८८ को मैंने बंबई बंदर छोड़ा।

: १० :

विलायत में

जहाज पर समुद्र-यात्रा में होनेवाला कष्ट तो जरा भी न हुआ, पर स्टुअर्ट (जहाज के नौकर) से बोलते झेंप

लगती। अंग्रेजी में बोलने की आदत न थी। मैं सारा दिन कोठरी में ही पड़ा रहता।

किसी तरह दुःख-सुख सहते यात्रा पूरी की और साउदेम्प्टेन (लंदन) बंदर पर पहुंचे।

मेरे पास चार सिफारिशी पत्र थे। सो मैंने डा० प्राणजीवन मेहता को साउदेम्प्टेन से तार कर दिया था। वह आये। उन्होंने प्रेमपूर्ण विनोद किया और यूरोपीय रीति-रिवाज की मेरी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। डाक्टर मेहता हंसते जाते थे और समझाते जाते थे। किसीकी चीज को छूना नहीं चाहिए, किसीसे जान-पहचान होने पर हिंदुस्तान में योंही जो सवाल किये जा सकते हैं, वैसे यहां नहीं किये जा सकते। बातें करते हुए ज़ोर से नहीं बोला जाता। हिंदुस्तान में अंग्रेजों से बातें करते हुए 'सर' कहने का जो रिवाज है, वह अनावश्यक है। 'सर' तो नौकर अपने मालिक को या अपने से बड़े अधिकारी को कहता है। आदि। उन्होंने होटल के खर्चे पर आपत्ति की और कहा कि किसी निजी कुटुंब में रहना ठीक होगा।

डा० मेहता और दलपतराम शुक्ल ने वेस्ट केंसिंगटन में एक एंग्लो-इंडियन का घर खोजा और मेरा डेरा वहां लगा।

मेरे भोजन का सवाल बड़ा विकट हो पड़ा। बिना नमक-मसाले का साग भाता न था। मालकिन बेचारी मेरेलिए पकाती भी तो क्या? दोपहर और शाम के खाने से मैं रोज़ भूखा उठता। मित्र मांसाहार के लिए समझाते, पर मैं टस-से-मस न हुआ। छत्तीस रोगों की एक दवा 'नन्ना' मेरे पास थी। मित्र ज्यों-ज्यों समझाते त्यों-त्यों मेरी दृढ़ता बढ़ती जाती। रोज़ मैं भगवान से रक्षा की याचना करता और वह पूरी होती। मेरी पढ़ाई शुरू नहीं हुई थी। मुश्किल से अखबार पढ़ने लगा था।

मैंने घूमना शुरू किया। मुझे निरामिष अर्थात् शाकाहारी भोजनालय की तलाश थी। मैं रोज़ १०-१२ मील का चक्कर लगता। इस तरह भटकते हुए एक दिन मैं फॅरिंग्टन स्ट्रीट पहुंचा और वहां वेजीटेरियन रेस्ट्रां (निरामिष भोजनालय) नाम पढ़ा। खुशी से उछलकर मैं अंदर पहुंचा भी नहीं कि दरवाज़े के पास कांच की खिड़की में बिकने के लिए रखी हुई पुस्तकें देखीं। साल्ट की लिखी 'अन्नाहार की हिमायत' नाम की पुस्तक एक शिलिंग देकर खरीदी और फिर भोजन करने बैठा। विलायत में आने के बाद यही पहला दिन था जब मैंने पेटभर खाना खाया।

ईश्वर ने मेरी भूख बुझा दी।

मैंने निश्चय किया कि मैं सभ्यों के लक्षण प्राप्त करूंगा। मैंने 'सभ्यता' सीखने का अपनी सामर्थ्य से बाहर का और छिछला रास्ता पकड़ा।

उच्च अंग्रेजी समाज में फबने के खयाल से आर्मी और नेवी स्टोर में कपड़े बनवाये। दस पौंड का शाम को पहनने का सूट बनवाया। दोनों जेबों में लटकाई जानेवाली असली सोने की चेन मंगवाई। टाई बांधने की कला सीखी। बड़े शीशे के सामने खड़े होकर टाई बांधने, बालों की ठीक पटियां पाड़ने और मांग काढ़ने में रोज दस मिनट नष्ट होते थे।

पर इतनी टीमटाम काफी नहीं थी। खाली पोशाक से थोड़े ही सभ्य बना जा सकता है! सभ्य पुरुष को नाचना जानना चाहिए। सभ्य पुरुष को लच्छेदार भाषण देना आना चाहिए। फ्रेंच अच्छी आनी चाहिए। अतः नाचना सीखने का निश्चय किया। वायलिन बजाना सीख लूं तो ताल-सुर का पता चलेगा। भाषण-कला सीखने को तीसरे उस्ताद का घर खोजा। 'बेल' का लिखा 'स्टैंडर्ड एलोक्यूशनिस्ट' खरीदा। पिट का भाषण शुरू किया।

इन्हीं 'बेल' साहब ने मेरे कान में घंटी (बेल)

बजाई। "मुझे कहां इंग्लैंड में ज़िंदगी बितानी है? नाच-नाचकर मैं सभ्य कैसे बनूंगा? मैं तो विद्यार्थी हूं। मुझे तो विद्या-धन जोड़ना चाहिए। मैं अपने सदाचार से सभ्य समझा जा सकूं तो ठीक है, नहीं तो मुझे यह लोभ छोड़ना चाहिए।"

सभ्य बनने की मेरी सनक कोई तीन महीने चली होगी। पोशाक की टीमटाम बरसों चली। पर अब मैं विद्यार्थी बन गया।

इस मोह-काल में भी मैं सावधान था। पाई-पाई का हिसाब रखता था। सोने से पहले सदा अपनी रोकड़ मिला लेता था।

मैंने अपना खर्च आधा कर डालने का तय किया। अबतक कुटुंबों में रहता था। उसके बदले अपना कमरा लेकर रहने का निश्चय किया। अनुभव के लिए अलग-अलग मुहल्लों में घर बदलने का तय किया। घर ऐसी जगह पसंद किया, जहां से काम के स्थान पर आधे घंटे में पैदल चलकर पहुंचा जा सके और गाड़ी-भाड़े के पैसे बच जायं।

यों खर्च आधा बचा। पर समय? मुझे मालूम था कि बैरिस्टरी के लिए ज्यादा पढ़ने की जरूरत नहीं होती। इससे मन में धीरज था। पर मेरी कच्ची अंग्रेजी

मुझे खलती थी। एक मित्र ने कहा कि लंदन की मैट्रिक परीक्षा पास कर लो। उसमें मेहनत अच्छी करनी होगी और साधारण ज्ञान बढ़ेगा। सो मैं खानगी तौर पर चलनेवाले एक मैट्रिक के क्लास में भरती होगया।

परीक्षा की तैयारी के साथ रहन-सहन में और अधिक सादगी लाने की कोशिश शुरू की। एक अंगीठी खरीदी और एक समय का खाना हाथ से पकाने लगा। दो कमरे छोड़े और आठ शिलिंग प्रति सप्ताह पर एक कमरा लिया। इस प्रकार जीवन सादा हो जाने से समय अधिक बचा। कौटुंबिक स्थिति के साथ मेरे रहन-सहन का मेल होगया। मेरे आत्मिक आनंद की सीमा न रही।

भोजन-संबंधी 'साल्ट' की पुस्तक पढ़ी। मुझपर उसका अच्छा असर पड़ा। इस पुस्तक के पढ़ने के बाद मैं स्वेच्छा से अन्नाहार का कायल हुआ। अब स्वयं अन्नाहारी रहकर दूसरों को भी वैसा बनाने का लोभ उत्पन्न हुआ। मसल मशहूर है कि 'नया मुल्ला जोर से बांग देता है।' इसलिए जिस मुहल्ले में मैं उस समय रहता था, उसमें 'अन्नाहारी मंडल' स्थापित करने का विचार किया। उस मुहल्ले में सर एडविन आरनाल्ड रहते थे। वह उपाध्यक्ष हुए। डा० ओल्डफील्ड अध्यक्ष

बने और मैं मंत्री। इससे मुझे संस्थाओं की रचना और उनके संचालन का कुछ अनुभव मिला।

पहले विलायत जानेवालों की संख्या अबसे कम थी। उनमें ऐसा रिवाज पड़ गया था कि वे विवाहित होते हुए भी अपनेको अविवाहित बताते। विवाह की बात छिपाने का एक कारण यह था कि यदि यह बात मालूम हो जाय तो जिन कुटुंबों में वे रहते हैं, उनकी जवान लड़कियों के साथ घूमने-फिरने और आमोद-प्रमोद करने की स्वतंत्रता नहीं मिल पावेगी। इस जाल में मैं भी फंस गया। इस बनावटी कुंवारेपन का स्वाद मैं थोड़ा ही चख पाया। मेरे झेंपूपन ने और मौन ने मुझे बहुत बचाया। जब मैं बात ही नहीं कर सकता था तो कोई लड़की मुझसे क्यों बोलती ?

पर हर जगह मैं कैसे बच सकता था ? असत्य का ज़हर मेरे अंदर से ईश्वर निकालना चाहता था। ब्राइटन के होटल में एक बुढ़िया से मेरा परिचय हुआ। वह लंदन में हर रविवार को अपने यहां भोजन के लिए निमंत्रण देती। मेरी शरम तुड़वाती। युवतियों में जान-पहचान करवाती और उनके साथ बातें करने के लिए ललचाती। कभी-कभी हमें अकेले

भी छोड़ देती । पहले मुझे यह सब अखरा, पर वृद्धा मुझे पक्का करती रही । मैं गढ़ा जाने लगा ।



विलायत में विलायती पोशाक में

अब मैं क्या करूं ? मैंने सोचा कि अपने ब्याह की बात बता दी होती तो कितना अच्छा था ! अब भी क्या बिगड़ा है ? मैं सच कह दूं तो सारे संकटों से बच सकता हूं । यह तय करके मैंने उसे पत्र लिखा कि अपने विवाह की बात अबतक छिपा रखी, इसका मुझे बड़ा दुःख है। जिस बहन से आपने मेरा परिचय

कराया है, उसके साथ मैंने कोई अनुचित व्यवहार नहीं किया है। आपकी ममता के लिए मैं आपका ऋणी हो चुका हूं। यदि आप अब भी मुझे अपने यहां आने योग्य समझेंगी तो इसे मैं आपके प्रेम का नया चिह्न समझूंगा और उसके योग्य बनने का प्रयत्न करूंगा।

पत्र भेजने के बाद मेरे दिल का बोझ उतर गया। उन महिला का जवाब मिला :

"यह अच्छा किया जो तुमने सच्ची बातें लिख दीं। मेरा निमंत्रण कायम है। विश्वास रखो, हमारी मित्रता में फर्क नहीं आवेगा।"

: ११ :

बैरिस्टर हुए

बैरिस्टर होने के लिए दो बातों की जरूरत थी। एक तो 'टर्म' पूरा करना यानी सत्रों में उपस्थिति, दूसरी कानून की परीक्षा देना। सत्रों में उपस्थिति के मानी हैं दावतें खाना। खाने में अच्छी-अच्छी चीजें होती हैं, पीने के लिए बढ़िया मानी जानेवाली शराब। उनके दाम अलबत्ता चुकाने होते। खाने के खर्च से शराब पीनेवालों का पीने का खर्च ज्यादा बैठता। शराब पीने के पीछे लोग कैसे

इतने पैसे बरबाद कर देते होंगे, यह समझ न पाता था। दावतों में मैं पहले कुछ भी नहीं खाया करता था, क्योंकि मेरे लायक तो वहां सिर्फ रोटी, उबले आलू और गोभी ही होती थी। शुरू में तो न रुचने के कारण नहीं खाया, पर पीछे जब उनमें स्वाद देखा तब तो और भी चीजें मांग लेने की शक्ति मुझमें आ गई थी।

इस खानपान से बैरिस्टरी की योग्यता में क्या वृद्धि हो सकती है, यह न उस समय मेरी समझ में आया, न पीछे ही।

कानून की पढ़ाई आसान थी। बैरिस्टरों को मजाक में 'दावत का बैरिस्टर' कहा जाता था।

परीक्षा पास करके १८९१ की १०वीं जून को मैं बैरिस्टर बन गया। ११ तारीख को इंग्लैंड के हाई-कोर्ट में ढाई शिलिंग देकर अपना नाम दर्ज कराया, १२ जून को हिंदुस्तान वापस लौटा।

पर मेरी निराशा और भय का अंत न था। मैंने देखा कि कानून तो मैंने जरूर पढ़ लिया था, पर ऐसी एक भी बात नहीं सीखी, जिससे वकालत करना आये। बैरिस्टर कहलाना आसान लगा, पर बैरिस्टरी करना कठिन। अपनी कठिनाइयां एक-दो मित्रों के

सामने रखीं। उन्होंने दादाभाई नौरोजी से मिलने की सलाह दी। पर दादाभाई के सामने अपनी कठिनाइयां रखने की हिम्मत न हुई।

उन्हीं मित्र ने या किसी और ने मि० फ्रेडरिक पिकट से मिलने की सलाह दी। मि० पिकट कंजर्वेटिव दल के थे। पर हिंदुस्तानियों के प्रति उनका प्रेम निर्मल और निःस्वार्थ था। पत्र लिखकर उनसे मिलने का समय मांगा। समय मिला। मैं उनसे मिलने गया। वह मुझसे मित्र की भांति मिले। मेरी निराशा को तो उन्होंने हँसकर उड़ा दिया। बोले, "तुम समझते हो कि सबका फिरोजशाह मेहता होना जरूरी है? फिरोजशाह या बदरुद्दीन तो एक-दो ही हुआ करते हैं। तुम निश्चय समझो कि साधारण वकील होने के लिए ज्यादा होशियारी की जरूरत नहीं होती। साधारण ईमानदारी और लगन के बल पर आदमी वकालत का धंधा मजे में चला सकता है। सब मुकदमे पेचीदा नहीं होते।"

मैंने उन वयोवृद्ध मित्र का बड़ा अहसान माना। उनके सामने तो मेरा भय क्षणभर को चला गया, पर बाहर निकलते ही वही घबराहट सवार होगई।

यों निराशा में तनिक-सी आशा का आश्वासन लेकर कांपते पैरों आसाम स्टीमर से बंबई बंदर में उतरा।

माताजी के दर्शनों के लिए मैं अधीर हो रहा था। पर उनके स्वर्गवास के बारे में मुझे कुछ पता न था। घर पहुंचने पर मुझे इसकी सूचना दी गई और स्नान कराया गया। मुझे यह खबर विलायत में भी दी जा सकती थी, पर आघात हल्का हो, इस विचार से बंबई पहुंचने तक बड़े भाई ने मुझे यह सूचना न देने का निश्चय कर रखा था। पिताजी की मृत्यु से मुझे जो चोट पहुंची थी उससे अधिक इस मृत्यु के समाचार से पहुंची। मेरे बहुत-से मनोरथ धूल में मिल गए। पर इस निधन समाचार को सुनकर मैं फूटकर नहीं रोया। आंसुओं को पी-सा गया और इस तरह काम-काज करने लगा, मानो माताजी की मृत्यु हुई ही न हो।

प्रार्थन...)	॥)
अयो... ,,	१)
भागवत... (हृ. उ.)	६॥)
श्रेयार्थी जमनालालजी ,,	६॥)
स्वतन्त्रता की ओर ,,	४)
बापू के आश्रम में ,,	१)
मानवताके झरने (माव.)	१॥)
बापू (घ. बिड़ला)	२)
रूप और स्वरूप ,,	॥=)
डायरी के पन्ने ,,	१)
ध्रुवोपाख्यान ,,	।)
स्त्री और पुरुष (टाल्स्टाय)	१)
मेरी मुक्ति की कहानी ,,	१॥)
प्रेम में भगवान ,,	२)
जीवन-साधना ,,	१।)
कलवार की करतूत ,,	।)
हमारे जमाने की गुलामी ,,	।॥)
बुराई कैसे मिटे ? ,,	१)
बालकों का विवेक ,,	।॥)
हम करें क्या ? ,,	३॥)
धर्म और सदाचार ,,	१।)
अंधेरे में उजाला ,,	१॥)
कल्पवृक्ष (वा० अग्रवाल)	२)
साहित्य और जीवन	२)
कब्ज (म० प्र० पोद्दार)	१)
हिमालय की गोद में	२)
कहावतों की कहानियां	२)
राजनीति प्रवेशिका	१)
जीवन-संदेश (ख.जिब्रान)	१।)
अशोक के फूल	३)
लोकमान्य तिलक	२॥)
हमारा कानून	५)
क्रांति की भावना	२॥)
तुकारामगाथा-सार	१॥)
कित्तूर की रानी	२)
जीवन-प्रभात	५)
...हास (२ भाग)	२०)
पंच...शी (... य० जैन)	१॥)
सप्तदशी	२)
रीढ़ की हड्डी	१॥)
अमिट रेखायें	३)
एक आदर्श महिला	१)
राष्ट्रीय गीत	।)
तामिल-वेद (तिरुकुरल)	१॥)
आत्म-रहस्य	३)
थेरी-गाथाएं	१॥)
बुद्ध और बौद्ध साधक	१॥)
जातक-कथा (आनंद कौ.)	२॥)
हमारे गांव की कहानी	१॥)
अन्नों की खेती	२)
दलहन की खेती	१)
साग-भाजी की खेती	३)
पशुओं का इलाज (प.प्र.)	॥)
रामतीर्थ-संदेश (३भाग)	१=)
रोटी का सवाल (क्रोपा०)	३)
नवयुवकों से दो बातें ,,	।=)
पुरुषार्थ (डा.भगवान्दास)	६)
काश्मीर पर हमला	२)
शिष्टाचार	॥)
भारतीय संस्कृति	३॥)
आधुनिक भारत	५)
फलों की खेती	२॥)
मैं तन्दुरुस्त हूं या बीमार	।॥)
भा० नवजागरण का इतिहास	३)
गांधीजी की छत्रछाया में	२॥)
भागवत-कथा	३॥)
जय अमरनाथ	१॥)
प्रगति के पथ पर ६ पुस्तकें	१॥)
संस्कृत-साहित्य-सौरभ (२८ पुस्तकें) प्रति पुस्तक	।=)
समाज-विकास-माला प्रति पुस्तक	।=)

समाज-विकास-माला की पुस्तकें

१. बद्रीनाथ
२. जंगल की सैर
३. भीष्म पितामह
४. शिवि और दधीचि
५. विनोबा और भूदान
६. कबीर के बोल
७. गांधीजी का विद्यार्थी-जीवन
८. गंगाजी
९. गौतमबुद्ध
१०. गांव सुखी, हम सुखी
११. निषाद और शबरी
१२. कितनी जमीन ?
१३. ऐसे थे सरदार ?
१४. चैतन्य महाप्रभु
१५. कहावतों की कहानियां
१६. सरल व्यायाम
१७. द्वारका
१८. बापू की बातें
१९. बाहुबली और नेमिनाथ
२०. तन्दुरुस्ती हजार नियामत
२१. बीमारी कैसे दूर करें ?
२२. माटी की मूरत जागी
२३. गिरिधर की कुंडलियां
२४. रहीम के दोहे
२५. गीता-प्रवेशिका
२६. तुलसी-मानस-मोती
२७. दादू की वाणी
२८. नजीर की नज्में
२९. संत तुकाराम
३०. हजरत उमर
३१. बाजीप्रभु देशपांडे
३२. तिरुवल्लुवर
३३. कस्तूरबा गांधी
३४. शहद की खेती
३५. कावेरी
३६. तीर्थराज प्रयाग
३७. तेल की कहानी
३८. हम सुखी कैसे रहें ?
३९. गो-सेवा क्यों ?
४०. कैलास मानसरोवर
४१. अच्छा किया या बुरा ?
४२. नरसी महेता
४३. पंढरपुर
४४. ख्वाजा मुईनुद्दीन चिस्ती
४५. संत ज्ञानेश्वर
४६. धरती की कहानी
४७. राजा भोज
४८. ईश्वर का मन्दिर
४९. गांधीजी का संसार-प्रवेश
५०. यह थे नेताजी
५१. रामेश्वरम्
५२. कब्रों का विलाप
५३. रामकृष्ण परमहंस
५४. समर्थ रामदास
५५. मीरा के पद
५६. मिलजुल कर काम करो
५७. कालापानी
५८. पावभर आटा

मूल्य प्रत्येक का छः आना

सस्ता साहित्य मण्डल

छः आना